अबला को सबला बनाने वाले पिताश्री

कहा जाता है कि भगवान ने मानव को अपने जैसा बनाया अर्थात् अपने समान गुणों से संपन्न देवी-देवता बनाया परन्तु समय अनवरत गति से बहता है और समय के साथ-साथ परिवर्तन भी अनवरत होता रहता है। न समय को रोका जा सकता है, न परिवर्तन को। परिवर्तन के शाश्वत नियम से विधाता की सर्वोच्च कृति संपूर्ण मानव भी अछूता नहीं रह सका और धीरे-धीरे उस पर अपूर्णता की काली छाया पड़ती गई। आगे बढ़ते समय के साथ यह काली छाया और ज़्यादा गहराती गई। द्वापर युग आते-आते मानव आत्मा के गुणों रूपी गहनों में काम-क्रोध की मिलावट हो गई और वह अष्टमी के चंद्रमा की तरह आठ कला तक कालिमा से भर गई। इस कालिमा ने सतयुगी दैवी संबंधों की भेंट में, स्त्री-पुरुष के आपसी सम्मानजनक संबंधों को भी कालिमा से रंग दिया। पुरुष ने शारीरिक बल के कारण प्रथम दर्जे का नागरिक होने का अहंकार पाल लिया और शारीरिक बल से हीन (मानसिक गुणों में पुरुषों से आगे होते हुए भी) नारी को, दूसरे दर्जे का नागरिक समझे जाने के भयंकर अभिशाप से ग्रस्त कर दिया गया। यहीं से प्रारंभ हुई उसके शोषण और उस पर ढाए जाने वाले अत्याचारों की अचर्चित कहानी।

नारी के प्रति हेय मान्यताएँ

'भोग्या', 'पुरुष की दासी', 'पाँव की जूती', 'नारी की अक्ल उसके वाम पाँव की एड़ी में', 'नारी के लिए पति परमेश्वर, गुरु' चाहे आहार, व्यवहार, विचार, आचार की दृष्टि से भ्रष्ट हो, 'नारी को मार-पीट कर वश में रखना चाहिए', 'ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी', 'नारी नर्क का द्वार' – तथाकथित साधु, संतों, धर्माचार्यों और समाज के ठेकेदारों द्वारा दी गई उपरोक्त मान्यताओं (वास्तव में कुमान्यताओं, असत्य मान्यताओं, अन्यायपूर्ण मान्यताओं) ने अत्याचारों और शोषण की इस आग में घी का काम किया।

इसमें संदेह नहीं कि समय-समय पर विरले समाजसुधारकों ने नारी की पीड़ा को समझ उसको सबल बनाने के पक्ष में आवाज़ उठाई परन्तु उनका वह कार्य थोड़ा सिरे चढ़ने के बाद उनके जाते ही ठण्डे बस्ते में डल गया। दूसरा, उनके द्वारा किए गए प्रयास, नारी और पुरुष के बीच पनपते दुर्भाव की जड़ों को समाप्त कर उन्हें उस स्तर तक नहीं ला सके कि दोनों एक-दूसरे के सहयोगी तो हों पर उनमें मनमुटाव और खींचतान नहीं। उनमें पारस्परिक अगाध आत्मिक स्नेह और सम्मान भावना तो हो पर आसुरी वृत्तियों का, शोषण का और एक-दूसरे के प्रति वासना का स्थान न हो और वे गृहस्थ की गाड़ी के दो पहिए बन गुणों और कलाओं में श्री लक्ष्मी और श्री नारायण के समान बनकर स्वर्गिक गृहस्थ आश्रम का निर्माण कर सकें।

नर-नारी को पवित्र बनाने की प्रभावशाली जागृति

हमें यहाँ यह कहते हुए कोई संकोच या झिझक नहीं है कि नारी को कामिनी के बजाय कल्याणी और अबला के बजाय शक्तिरूपा बनाने के दुष्कर कार्य को, समाज की कड़ी चुनौतियों का सामना करते हुए भी पिछले 70 वर्षों से सफलता के शिखर पर ले जाने में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय

अथक रूप प्रवृत्त है। इसके संस्थापक ने 'नारी स्वर्ग का द्वार है' और 'वन्दे मातरम्' का नारा उस समय लगाया जब किसी कोने में, कोई इस बारे में आवाज़ उठाने की हिम्मत ही नहीं करता था। आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखने वाले सभी लोग मानते हैं कि शरीर तो प्रकृति का है, नाशवान है, पाँच तत्वों से बना चोला अथवा पुतला है। तब फिर इसके आधार पर क्या झगड़ा करना?समाज में तो दोनों ही प्रकार के चोलों की ज़रूरत है, विभिन्नता ही सृष्टि की शोभा है तब फिर स्त्री चोले की निन्दा क्यों? इस प्रकार के विचारों से सुसज्जित दादा लेखराज, जो प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की स्थापना के निमित्त बने, कोलकाता के एक सुप्रसिद्ध जौहरी थे। वे श्री नारायण के अटूट भक्त और नियमित रूप से श्रीमद्भगवद् गीता का पठन करते थे। उन्हें सन् 1936 में कुछ दिव्य साक्षात्कार हुए जिनमें उन्हें आदेश मिला कि पुरुष और नारी का आपसी संबंध पवित्र स्नेह और आत्मिक दृष्टिकोण पर आधारित हो। इसके लिए सभी को राजयोग की शिक्षा दी जाए ताकि एक नए सतयुगी, दैवी समाज की नींव पड़े। दादा लेखराज,

इस ईश्वरीय आदेश को शिरोधार्य मानकर, अपने ही निवास स्थान पर, नर-नारियों को पवित्र बनने की प्रभावशाली जागृति देने लगे। माताओं-कन्याओं को उन्होंने ताकीद किया कि वे पाश्चात्य बनाव-शृंगार का अंधानुकरण न करें, प्रतिदिन सत्संग करें, तामसिक आहार (शराब, माँस, अण्डे) का त्याग करें, अपनी दृष्टि-वृत्ति को शुद्ध बनाएँ तथा सरस्वती, दुर्गा आदि के समान गुणवान, शक्तिवान, कलावान, वैराग्यवान बनें ताकि भारत का कल्याण हो। इसके लिए उन्होंने कन्याओं के लिए एक अलग भवन बनवाकर छात्रावास तथा पाठशाला की व्यवस्था की। यहाँ उनके चरित्र को महान तथा स्वभाव को दिव्य बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया। बड़ी कन्याओं को सिलाई, कढ़ाई, संगीत आदि की शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भर बनाने का कदम उठाया गया। विद्यालय का वातावरण इतना स्वच्छ तथा शिक्षा-व्यवस्था इतनी प्रेमपूर्ण, अनुशासनपूर्ण थी कि शिक्षा विभाग के अधिकारी भी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे।

सर्वस्व कुर्बान

आज के संसार में जहाँ मनुष्य अपनी खून जाई कन्या को भी संपत्ति का अधिकार देते हिचकिचाता है क्योंकि वह उसे पराया धन मानता है, पिताश्री ने ऐसा हीरे तुल्य, अनोखा, अद्वितीय, 'न भूतो न भविष्यति' कार्य कर दिखाया कि साधारण मानव आश्चर्यानन्द से भर जाता है। उन्होंने अपनी संपूर्ण चल और अचल संपत्ति (जो उस समय लाखों में थी) कन्याओं और माताओं का एक ट्रस्ट (प्रन्यास) बनाकर उन्हें समर्पित कर दी। इस प्रन्यास की मुखिया (Head) बनाया एक 18 साल की गुणमूर्त, अध्यात्मप्रिय, ईश्वरीय लगनशील कन्या को जिसे आज हम माँ जगदम्बा सरस्वती के नाम से जानते हैं। उन्होंने धन तो लगाया ही, साथ-साथ तन और मन से भी, वे इस प्रन्यास में समर्पित हो गए और 'वन्दे मातरम्' का नारा लगाते हुए यह घोषणा कर दी कि इस संस्थान की प्रशासनिक मुखिया ओम् राधे (जगदम्बा माँ) है और मैं इनका सेवक मात्र हूँ। इस प्रकार शारीरिक अहंकार में नारी के सामने अपने को ज्ञानी, बुद्धिमान, धन तथा पद-संपन्न समझकर, उसे दबाकर रखने वाले पुरुष समाज के काफिले के सामने पिताश्री ने एक ऐसा चमत्कारिक कार्य कर दिखाया कि 'अपने आप सभी कुछ करके अपने आप छिपाया' वाली उक्ति उन पर पूर्ण चरितार्थ हो गई। निस्संदेह इसके पीछे ईश्वरीय आदेश तो था ही। इस प्रकार नारियों को ज्ञान-कलशधारिणी और आसुरीवृत्ति संहारिणी बनाने के निमित्त बने दादा लेखराज ने कड़े विरोध की अग्नि ज्वाला को लांघते हुए भी नारी को सबला बनाने के ईश्वरीय कर्त्तव्य का ध्वज ऊँचा रखा और अपना सर्वस्व कुर्बान कर दिया।

बाबा द्वारा खोले गए विद्यालयों की उत्तम व्यवस्था को देख सिन्ध के प्रतिष्ठित तथा साधारण जन दोनों ने ही अपने-अपने बच्चों को वहाँ प्रवेश दिलाया और उनके घरों से महिलाएँ तथा कन्याएँ भी सत्संग सुनने आने लगीं। इससे उनके जीवन को व्यर्थ के रीति-रिवाजों, मन की अशान्ति, तामसिक आहार, फैशन और काम-क्रोध के कुठाराघात से मुक्ति मिलने लगी। उनके मन में विचार आने लगे कि हमें भी अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए कुछ करना चाहिए और पुरुष के लिए 'भोग की गुड़िया' ही नहीं बने रहना चाहिए।

दादा लेखराज, जिन्हें पिताश्री के सम्मानजनक संबोधन से जाना जाने लगा था, ने संयम-नियम को अपनाकर सुखी जीवन जीने की शिक्षा नर और नारी दोनों को दी। कई युगल तो इसमें ढल गए पर कई जन ऐसे भी थे कि जो शाकाहारी भोजन को 'घास' मानते थे और तामसी भोजन के पूर्णतया शिकार थे। उन्हें पिताश्री की ये शिक्षायें कैसे भा सकती थी? इसलिए उन्हों से सामना होना स्वाभाविक था। नारी को दासी और भोग्या मानने वाले पुरुषों ने अपने-अपने घरों में उन नारियों पर अत्याचार करने आरंभ कर दिए जिन्होंने विषय कुठाराघात से मुक्ति माँगी और तामसिक भोजन को हाथ न लगाने से नम्रतापूर्वक मना कर दिया। यद्यपि वे घर का सब काम करती थीं, पति की सेवा करना अपना कर्त्तव्य मानती थी, बस काम-विकार से मुक्ति चाहने के नाम पर उन पर वो मार पड़ी कि सुनने और देखने वाले की रूह भी काँप जाए। उनका जेवर छीनकर, लात मारकर उन्हें असहाय हालत में घर से बाहर कर दिया गया। वासना, आक्रोश तथा अत्याचार के सामने 'अबला' को डटा देखकर पुरुष की क्रोधाग्नि सातवें आसमान को छूने लगी और उसने उसे ऐसी यातनाएँ दीं, जितनी की अंग्रेज़ सरकार ने भी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वालों को न दी होंगी।

परन्तु भगवान सर्वसमर्थ हैं और उनकी शिक्षाएँ भी मनोबल बढ़ाने वाली हैं। अत्याचारों के कारण ये कन्याएँ-माताएँ नष्टोमोहा बन गईं, अपने कर्त्तव्य में अडिग हो गईं। फैशन को छोड़ श्वेत वस्त्र पहन इन्होंने त्याग, तप, सेवा की डगर थाम ली और प्रतिज्ञा कर ली – अब हम वासना की जंजीरों से मुक्ति पाकर ही दम लेंगी, हम समाज को प्राचीन देवियों और शक्तियों का कृत्य दोहराकर दिखाएंगी और जिस पुरुष वर्ग ने हम पर अत्याचार किया उनके प्रति भी पवित्र स्नेह और कल्याण की भावना रखकर देश में आध्यात्मिक क्रान्ति लायेंगी।

आज इस संस्थान में कई हज़ार कन्याओं-माताओं ने जीवनदान दिया हुआ है। इस कार्य में पुरुष वर्ग भी इनका पूरा सहयोगी है। कितने ही पुरुषों ने भी पवित्रता की स्थापना के इस कार्य में अपना तन-मन-धन समर्पित किया हुआ है। व्यवसायिक जीवन और गृहस्थ आश्रम में कर्त्तव्यों को निभाने वाले अन्य लाखों पुरुष और महिलाएँ भी समर्पित बहनों के निर्देशानुसार चलते हैं। संपूर्ण कार्य को महिलाएँ, पुरुषों के सहयोग से चलाती हैं। यहाँ ज्ञान-कलश नारी को दिया गया जिस पर आज तक सदा पुरुष वर्ग (संन्यासी या पण्डितों) का ही एकाधिकार समझा गया। इस कार्य से एक ऐसे समाज की स्थापना हो रही है जिसमें नारी को श्री लक्ष्मी के समान स्थान मिलेगा। नारी और नर दोनों एक-दो के सहयोगी होंगे और दोनों दिव्य मर्यादा का पालन करते होंगे।

इस प्रकार पिताश्री ने जो कार्य किया उससे युवक और युवतियाँ फैशन, कैबरे डांस, व्यसन, अश्लील साहित्य से मुक्त होकर अपनी शक्तियों को रचनात्मक कार्य में लगा रहे हैं। इससे उनका आर्थिक स्तर भी सुधर रहा है। शारीरिक रोगों से मुक्त और दीर्घायु को प्राप्त हो रहे हैं। सती प्रथा, दहेज प्रथा तथा बाल विवाह को, कानून के डंडे के बिना ही दिव्य विवेक के आधार पर नकारा जा रहा है। सादा जीवन, उच्च विचार की अवधारणा छेड-छाड़ को भी समाप्त कर देती है। विधवाएँ भी ज्ञान-योग का सहारा पाकर ईश्वरीय आनन्द में झूमती हैं। पति या ससुराल के सदस्यों द्वारा प्रताड़ित नारी भी, जो आत्महत्या के मार्ग को अपनाने को तैयार हो रही थी, योग से शान्ति प्राप्त कर जीवन को परमार्थ में लगाने का परम-भाग्य पा रही है। इस प्रकार कितने ही नर-नारी, शरीर-हत्या के जघन्य पाप से मुक्त हो गए हैं। पिताश्री ने नारी उद्धार और समाज उद्धार का जो अविस्मरणीय कार्य किया है वह नये युग की स्थापना का आधार स्तंभ है। धन्य हैं पितारी और उनका सर्वस्व बलिदान!

- ब्रह्माकुमारीज् वार्ता फिचर्स
www.bkvarta.com